# प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसके गौरव की गाथा का गान पूर्व एवं पश्चिम के मूर्धन्य विद्वान् करते रहे हैं। इस संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी समन्वयवादी दृष्टि रही है - चाहे वह धार्मिक मान्यताओं से संबंधित हो चाहे कोई अन्य। एक बार किसी ने गाँधीजी से पूछा कि जब आपकी नजर में सभी धर्म या मजहब समान हैं तो आप अपने को हिन्दू ही क्यों कहते हैं? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि हिन्दू होकर ही मैं ऐसा कह सकता हूँ कि "सभी मजहब समान हैं।" उनके इस कथन के पीछे यह भाव छिपा है कि हिन्दू धर्म ज्यादा उदार है, इसके अन्दर हर तरह की विचारधाराएँ घुली - मिली हैं। इसके अन्दर द्वैत, अद्वैत, शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि सभी प्रकार की विचारधाराएँ एक सामञ्जस्य में स्थित हैं। प्राचीन ऋषियों एवं मुनियों ने विचारों की विभिन्नता के सामञ्जस्य के लिये सूत्र ढूँढ़ निकाले और प्रत्येक प्रकार की यहाँतक कि विरोधी विचारधाराओं को भी उन्होंने पिरोकर एक अत्यन्त उदार आध्यात्मिक एवं धार्मिक संस्कृति को जन्म दिया जिसे हम सनातन धर्म एवं संस्कृति कह सकते हैं। अपने ग्रन्थों में इन ऋषियों ने अपने समन्वयात्मक एवं उदार विचारों का प्रतिपादन किया।

परन्तु दुर्भाग्यवश राग - द्वेष के कारण हमने अपने पूर्वज मनीषियों के सन्देश को भुला दिया। फलस्वरूप हम आपस में सम्प्रदाय एवं मजहब के नाम पर बुरी तरह से लड़ने लगे। हमारे आपसी लड़ाई की कोई सीमा नहीं रही, छोटी - छोटी धार्मिक बातों को लेकर भी लड़ने लगे। परस्पर श्रेष्ठता को लेकर शैवों एवं वैष्णवों की लड़ाईयाँ तो इतिहास में प्रसिद्ध रही ही हैं, लेकिन वैष्णव तथा शैव अपने - अपने सम्प्रदायों के भीतर भी लड़ते रहे हैं। कई बार लड़ाईयाँ इतनी छोटी - छोटी बातों को (जैसे तिलक या त्रिपुण्ड्र को) लेकर होती रही हैं कि सामान्यरूप से विचारवान् व्यक्ति यह कह बैठता है कि धर्म व्यर्थ की वस्तु है, यह अशान्ति एवं कलह की वस्तु है, यह मानव को जोड़ने की बजाय तोड़नेवाली वस्तु है। अतः आज पुनः इस बात की आवश्यकता है कि हम अपने पूर्वजों के सामञ्जस्यवादी विचारों की याद दिलायें।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक लघु प्रयास है। इसे लिखने की प्रेरणा मुझे 1995 - 96 के बीच अपने गुरुदेव अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद(स्वामी) श्रीगोपीचन्दजी महाराज(ख्यातनामा शिवलौती महाराज) से मिली। गुरुदेव वार्तालाप के दौरान कई बार यह बताते थे कि अधिकांश वैष्णव - भक्त भगवान् शिव के स्वरूप का सही मूल्यांकन नहीं कर पाते और वे शिव की उपासना को हेय अथवा निम्नकोटि की समझते हैं। न केवल वैष्णव संत बल्कि आम (कम से कम उत्तर - भारत के) लोगों को भी शिव एवं शिवोपासना के महत्त्व का उचित ज्ञान नहीं है। उनकी बातों से मैं भी सहमत था,

क्योंकि मैंने भी अपने जीवन में ऐसा ही अनुभव किया था। गुरुदेव से इस प्रकार की बातें सुनकर कभी-कभी मैं उनसे कहता कि शास्त्रों में वैसी बातें नहीं लिखी हैं जैसा अधिकांश वैष्णवजन सोचते हैं। मेरे द्वारा ऐसा कहने पर वे पूछते कि तब ऐसा क्यों है कि लोग शिव एवं शिवोपासना को उचित स्थान नहीं देते? उनके इस प्रकार प्रश्न करने पर हम इसके कारणों पर विचार करने लग जाते।

इसके अनेक ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारण हैं। उन सबकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है। हम यहाँ सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि आमलोगों या आम वैष्णव संतलोगों को शास्त्रों की बातों का ज्ञान नहीं है क्योंकि प्रमुख ग्रन्थों को पढ़ने की उन्हें या तो सुविधा नहीं है या अवकाश एवं अवसर नहीं है या योग्यता नहीं है। आमलोगों को उन्हीं बातों का ज्ञान होता है जिसका ज्यादा प्रचार-प्रसार होता है। पिछले सैकड़ों सालों से (विशेषकर तुलसीदास एवं सूरदास जैसे सन्तों की रचनाओं के बाद से) जिन बातों का प्रचार-प्रसार प्रभावशाली ढंग से होता रहा है उन्हीं बातों का जनमानस पर असर पड़ा, वे ही उनके विचारों को ढालते रहे तथा वे ही मन की धारणाओं को जन्म देते रहे। रामलीला एवं कृष्णलीला के नियमित, व्यापक एवं दीर्घकालीन मंचन तथा रामायण एवं भागवत की कथाओं के नियमित और व्यापक प्रचार अभियान के कारण (विशेषतः उत्तर) भारतीयों का मानस वैष्णव मान्यताओं से इतना प्रभावित हो गया है कि उनके लिये शिव एवं शिव की उपासना महत्त्वहीन या तुच्छ लगने लगी है। अन्य कारणों के अलावा यह तथ्य एक प्रमुखतम कारण है जिसके प्रभाव से वर्त्तमान काल के अधिकांश वैष्णव शिव एवं शिवोपासना को हेय कोटि का समझते हैं। और उनकी इस प्रकार की समझ शैव एवं वैष्णवों के बीच तनाव का कारण बनती है।

सम्भवतः इन कारणों को ध्यान में रखकर ही गुरुदेव ने मुझसे एक बार कहा कि क्यों न ऐसी पुस्तक लिख डालो जिसमें सभी प्रमुख शास्त्रों या ग्रन्थों के प्रमाण के साथ भगवान् शिव की गरिमा प्रतिष्ठित हो। लोगों को न तो ग्रन्थ उपलब्ध होते और न ही विशाल ग्रन्थों को पढ़ने के लिये समय एवं श्रम उपलब्ध होता है। तथा सभी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद उपलब्ध न होने से सामान्य लोगों को पढ़ने में कठिनाई भी आती है। गुरूदेव की बात मुझे जँच गयी और मैंने एक ऐसी पुस्तक लिखने का विचार किया जिससे वैष्णवों एंव शैवों के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने में मदद मिल सके। पुस्तक के लक्ष्य का निर्धारण करने के बाद उसके स्वरूप पर विचार किया गया। निर्णय यह हुआ कि पुस्तक ऐसी हो जिसमें शिवतत्त्व के महत्त्व का प्रतिपादन हो ताकि विष्णुतत्त्व एवं उनके विभिन्न अवतारों के महत्त्व-संबंधी प्रचारों के प्रकाश में लोग शिवतत्त्व तथा शिवोपासना का सही मूल्यांकन कर सकें।

मेरे लिये इस प्रकार की पुस्तक के लेखन का कार्य अत्यन्त कठिन था कारण कि कई ग्रन्थों

के हिन्दी अनुवाद ही नहीं हैं। परन्तु मैंने इस कार्य को स्वीकार कर लिया।

संस्कृत का विद्यार्थी न होते हुए भी मैंने पुस्तक लिखने का कार्य प्रारंभ कर दिया। रास्ते में अनेक कठिनाइयाँ आयीं। संस्कृत के विद्वानों से कई जगह परामर्श लेने पड़े। कई स्थलों पर विशेषज्ञों के परामर्श के अभाव में मैंने अपने ही विवेक का प्रयोग कर श्लोकों की व्याख्याएँ की। अगर विद्वान् पाठकों को कहीं पर व्याख्या की भूलें मिलें तो वे मुझे क्षमा कर देंगे और वे मुझे सूचित करेंगे ताकि उन्हें अगले संस्करण में सुधार दिये जायँ।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के आरंभ में जो लक्ष्य था उसमें थोड़ा परिवर्तन हुआ। बाद में यह भी सोचा गया कि पुस्तक को ज्यादा उपयोगी बनाने के लिये इसमें भगवान् शिव की उपासना संबंधी कुछ उपयोगी बातें भी जोड़ दी जायँ। उपासना संबंधी बातों को सम्मिलित करलेने पर पुस्तक का कलेवर ज्यादा बढ़ गया। फलस्वरूप इस पुस्तक को दो भागों में छापने का विचार बना। दूसरे भाग में उपासना संबंधी बातें छापने की योजना बनी। अतः सम्पूर्ण पुस्तक को चार खण्डों में बाँटा गया। प्रथम भाग में 'शिव माहात्म्य खण्ड' को तथा द्वितीय भाग में 'शिवोपासना खण्ड', 'शिवोपासक खण्ड' तथा 'शैवतीर्थ खण्ड' को सम्मिलित किया गया।

शिवमाहात्म्य खण्ड के अन्तर्गत वेदों, उपनिषदों, कुछ प्रमुख रामायणों, महाभारत, अठारह महापुराणों, कई उपपुराणों तथा शिवप्रोक्त कुछ प्रमुख गीताओं जैसे अनेक ग्रन्थों में निहित शिव के स्वरूप एवं उनकी साधना संबंधी प्रमुख बातों का विवेचन करते हुए भगवान् शिव के माहात्म्य को दर्शाया गया है तथा उनकी श्रीविष्णु से अभिन्नता को भी प्रदर्शित किया गया है। दूसरे खण्ड में भगवान् शिव की उपासना विधियों जैसे लिंगार्चन, पार्थिवलिंगपूजन, मानसपूजा, नाना प्रकार के स्तोत्र, महामृत्युंजय तथा पंचाक्षर मन्त्रों के जप आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। दूसरे भाग के तृतीय खंड में (कुछ पौराणिक एवं ऐतिहासिक) प्रमुख शिव-भक्तों जैसे दधीचि, कालिदास, विवेकानन्दादि के बारें में चर्चा की गयी है। दूसरे भाग के चौथे खण्ड में प्रमुख शैवतीर्थों जैसे 12 ज्योर्तिलिंग, कैलास-मानसरोवर, पशुपतिनाथ आदि का वर्णन किया गया है।

प्रथम भाग में शिव-माहात्म्य के साथ-साथ उनके नाम की महिमा के बारे में भी बताया गया है। इस खण्ड में महाभारत के कई अंश जो शिव के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं, उन्हें मूलरूप में संक्षिप्त करके प्रस्तुत किये गये हैं। इस खण्ड के पाठक को शिव के स्वरूप एवं उनकी उपासना संबंधी बातें शीर्षकगत ग्रन्थों के मूल उद्धरण के साथ-साथ प्राप्त होंगी। परन्तु इससे पाठक को यह नहीं समझ लेना चाहिये कि ग्रन्थ विशेष के मात्र इतने ही उद्धरण या संदर्भ शिवमाहात्म्य एवं शिवोपासना से

संबंधित हैं। यहाँ तो केवल चुने हुए उद्धरण ही प्रस्तुत किये गये हैं। हाँ कुछ छोटे ग्रन्थों के उद्धरण काफी हदतक पूर्ण-रूपेण दे दिये गये हैं।

इस पुस्तक को लिखने की दृष्टि धार्मिक एंव समन्वयवादी रही है न कि ऐतिहासिक, बुद्धिवादी एवं विशेषज्ञ की। पुस्तक को सामान्य लोगों के उपयोग के लिये समझकर लिखा होने के कारण इसमें बौद्धिक एवं विशेषज्ञों की दृष्टि से अनेक कमियाँ होंगी। परन्तु इस कमी के बावजूद भी पुस्तक जन-सामान्य के साथ-साथ ऐसे विद्वानों एवं विद्यार्थियों के लिये भी उपयोगी साबित हो सकती है जो शैवमत में रुचि रखते हों।

पुराणों का विभाजन कई प्रकार से किया गया है जैसे सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक। सात्त्विक पुराणों में भगवान् विष्णु की, राजसी में ब्रह्माजी की तथा तामसिक में भगवान् शिव की महत्ता का अधिकांशतः वर्णन है। पुराणों का विभाजन चाहे हम किसी भी प्रकार से क्यों न करें एक बात पुराण-पाठकों के सामने अवश्य बार-बार आती है। वह यह कि जिस पुराण का जो प्रमुख देवता होता है उसी को सर्वश्रेष्ठ बताया जाता है तथा अन्य देवताओं का उसे अधिपति बताया जाता है। अन्य ग्रन्थों में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है। उदाहरण के लिये रामायण में राम को, भागवत में कृष्ण को, विष्णु पुराण में विष्णु को, मुद्गल पुराण में गणेश को, देवी भागवत एवं मार्कण्डेय पुराण में देवी को ही सर्वश्रेष्ठ और अन्य को उनके अधीनस्थ बताया गया है। इसी प्रकार इन ग्रन्थों में तत्संबंधी देवता की उपासना तथा उसके मन्त्रों को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। इस पुस्तक में यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि इन ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ा जाय तो उन्हें इन विरोधी प्रतिपादनों से कोई परेशानी नहीं होगी। जब पाश्चात्य विद्वानों जैसे मैक्समूलर आदि ने भी इस तरह की बातें देखीं तो उन्होंने भारतीय धर्म की इस प्रवृत्ति को समझाने के लिये नये शब्द हीनोथीइज्म का निर्माण किया। जिसका अभिप्राय यह है कि सभी देवता एक ही देवता के विभिन्न रूप हैं। एक देवता ही सभी रूपों एवं तत्संबंधी नामों को धारण करता है। यही नहीं वह एक देवता स्वयं भी अनेक नामों से पुकारा जाता है। 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'। दूसरे शब्दों में सारे नाम एवं सारे रूप उसी एक परमतत्त्व शिव के हैं। एक ही भगवान् विभिन्न लीलाव्यापार के लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकार-सम्पन्न साधकों के कल्याण के लिये अनन्त रूपों में प्रकट होते रहे हैं। भगवान् के ये सभी रूप नित्य, पूर्ण और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। अपनी-अपनी रुचि और निष्ठा के अनुसार जो जिस रूप और नाम को इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपों से समस्त रूपमय एकमात्र भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

सभी ग्रन्थों में स्पष्टरूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि सभी प्रमुख देव मूलतः एक ही हैं।

एक ही तत्त्व अपने को, सृष्टि के आदि में, तीन प्रमुख देवों के रूप में प्रकट करता है। वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में शिव की तथा शैव कहे जानेवाले पुराणों में विष्णु की महिमा गायी गयी है और दोनों को एक या अभिन्न बताया गया है तथा उक्त पुराण विशेष के विशिष्ट प्रधान देव ने अपने ही मुख से अन्य पुराणों के प्रधान देवता को अपना ही स्वरूप बतलाया है।

पुराणों में कई बार परस्पर विरोधी या थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ कथाएँ मिलती हैं। उनका एक कारण समय के साथ ग्रन्थों में साम्प्रदायिक भावनाओं का जुड़ जाना है। कथाओं में मिलावट कर अपने सम्प्रदाय को पुष्ट करने तथा दूसरों को हेय दिखाने का प्रयास किया जाता है। दूसरा कारण कथाओं का कल्प भेद या सृष्टिभेद है। प्रत्येक कल्प में सृष्टि-रचना की प्रक्रिया तथा सृष्ट वस्तुओं के स्वरूप आदि लगभग एक समान होते हैं परन्तु कभी-कभी उनमें कुछ अन्तर भी आ जाता है। पुराणों के सृष्टितत्त्व को जाननेवाले लोग इसे सहज में ही समझ सकते हैं। उदाहरण के लिये वायु पुराण की कथाएँ श्वेत कल्प की, अग्नि पुराण की ईशान कल्प की, भविष्य पुराण की अघोर कल्प की, नारद पुराण की वृहत्कल्प की तथा भागवत की ब्राह्म कल्प की हैं। इन कल्पों के भेद से देवताओं की प्रमुखता में भी भेद हो जाता है। किसी कल्प की कथा में ब्रह्मा की तो किसी में विष्णु की तो किसी में शिव की महत्ता का कथन किया जाता है।

पुस्तक के प्रथम भाग (जिसमें प्रथम खण्ड का वर्णन है) के अध्ययन से यह बात उभरकर आती है कि भगवान् शिव परमतत्त्व अथवा ब्रह्म हैं जिनके निर्गुण एवं सगुण दो रूप हैं। निर्गुणरूप में उन्हें कूटस्थ, अचिन्त्य, चैतन्यस्वरूप, मन-वाणी से परे, अविनाशी, निरञ्जन, अद्वैत, ॐकारस्वरूप, नित्य, शुद्ध तथा निष्प्रपंच आदि कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र-स्वरूप, जगत्स्वरूप, तीनों लोकों के अधीश्वर, पंचमुख, दस भुजावाले, त्रिनेत्र, चन्द्रमा, गंगा, गजचर्म, मृगचर्म, मुण्डमाला, त्रिशूल तथा पिनाक आदि को धारण करनेवाले, वरदाता, आशुतोष, भोगमोक्ष-दाता, अर्द्धनारीश्वर, नीलकंठ, त्रिपुर, जालंधर तथा अधंक आदि राक्षसों का वध करनेवाले, पशुपति, भूतपति, जगत्पति, कैलासवासी, सब पर दया करनेवाले, भक्तवत्सल, लिंगरूप, वृष पर सवारी करनेवाले, कर्पूर के समान गौर वर्णवाले इत्यादि विशेषणों व संज्ञाओं से युक्त माना गया है।

इसी प्रकार ग्रन्थों में लिंगोपासना को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। शिव के प्रमुख मन्त्रों में पंचाक्षर, ॐकार तथा महामृत्युञ्जय की विस्तृत चर्चा की गयी है। पंचाक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) को सर्वश्रेष्ठ मन्त्र माना गया है तथा इसमें सभी लोगों-स्त्री, शूद्र, मलेच्छ तथा राक्षस आदि और शुद्ध वा अशुद्ध का समानरूप से अधिकार है। शैवतीर्थों में काशी को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसका उल्लेख

लगभग सभी ग्रन्थों में है।

सभी ग्रन्थों में यह कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रदेव तीनों तत्त्वतः एक ही हैं। एक ही परम सत्ता, सदाशिव, सृष्टि-व्यापार के लिये अपने को तीन रूपों में विभक्त कर लेती है। अतः प्रपंच के धरातल पर इन तीनों में भेद है परन्तु मूलतः वे सब एक ही हैं। ये तीनों देव प्रकृति के गुणों की भिन्नता से पैदा हुए हैं अतः इनमें अलग-अलग गुणों की प्रधानता होती है। इसी कारण इनके कार्य भी अलग-अलग नियत किये गये हैं। भगवान् विष्णु का कार्य सृष्टि का पालन करना है अतः वे धरती पर अवतार लेकर दुष्टों या राक्षसों का विनाश करते रहते हैं। चूँकि वे सत्त्वगुण से युक्त हैं अतः उन्हें संहार करने के लिये शिव की शक्ति का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि वे ही संहार के देवता हैं। इसीलिये अनेक पुराणों में विष्णुजी को संहारक अस्त्रों (जैसे सुदर्शन चक्र आदि) की प्राप्ति शिवजी से दिखायी गयी है। तीनों ही देवता एक दूसरे की मदद से सृष्टि-व्यापार चलाते रहते हैं। अन्त में परमशिव ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र सहित समस्त सृष्टि का नाश कर डालते हैं और अपनी अद्वैत निष्कल समाधि में लीन हो जाते हैं।

कुछ लोग शिव को तामसी देव मानकर उनकी उपासना में दोष समझते हैं। वास्तव में यह उनका भ्रम है जो साम्प्रदायिक मनुष्यों द्वारा पैदा किया हुआ है। जिन भगवान् शिव का गुणगान वेदों, उपनिषदों और वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में भी गाया गया है, उन्हें तामसी बताना ठीक नहीं है। परात्पर शिव तो गुणातीत हैं, वहाँ तो गुणों की क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत नित्य दिव्य साकार चैतन्य रस-विग्रहस्वरूप में क्रिया है, उसमें भी गुणों का खेल नहीं है। भगवान् की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है। और जिन त्रिदेव-मूर्तियों में सत्त्व, रज एवं तम की लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणों की क्रिया के अनुसार नहीं है। भिन्न-भिन्न क्रियाओं के कारण उनपर सत्त्व, रज एवं तम का आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह अपने आप में गुणातीत हैं।

शिव के उपासक निर्गुण ब्रह्म को सदाशिव, सर्वव्यापी तथा निराकार सगुण ब्रह्म को महेश्वर, सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले को ब्रह्मा, पालनकर्त्ता को विष्णु और संहारकर्त्ता को रुद्र कहते हैं और इन पाँचों को ही शिव का रूप बतलाते हैं। इसी प्रकार विष्णु के उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्म को महाविष्णु; सर्वव्यापी एवं निराकार सगुण ब्रह्म को वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपों को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश कहते हैं। नाना प्रकार के ग्रन्थों के विवेचन से उपरोक्त तथ्यों को इस पुस्तक में दर्शाया गया है। और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि तत्त्वतः एक ही हैं। सभी प्रकार के उपासक एक सत्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा को ही मानकर सच्चे सिद्धान्त पर चल रहे हैं। नाम-रूप का भेद है, परन्तु वस्तु-तत्त्व में कोई भेद नहीं है।

सबका लक्ष्य एक ही है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिव के उपर्युक्त तत्त्व को न जानने के कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णु की और कुछ वैष्णव भगवान् शिव की निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन से रहते हैं। परन्तु इस प्रकार के व्यवहार ज्ञानरहित समझे जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि ऐसा करने से एकनिष्ठ अनन्य उपासना में दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पति को ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई पति के माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि और पति के अन्यान्य संबंधी-प्रेमी बन्धुओं की भी पति की आज्ञानुसार पति की प्रसन्नता के लिये यथोचित आदरभाव से मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्म से जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यश को प्राप्त करती है। वास्तव में दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धि में है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्त्तव्य है। इसी प्रकार परमात्मा के किसी एक नाम-रूप को अपना-अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्य भाव से भक्ति करते हुए भी अन्यान्य देवों की अपने इष्टदेव की आज्ञानुसार उसी स्वामी की प्रीति के लिये श्रद्धा और आदर के साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। इस पुस्तक में पाठक अनेक ग्रन्थों के सन्दर्भ में यह पायेंगे कि भगवान् शिव विष्णु से या विष्णुजी शिव से यह कहते हैं कि हम दोनों में कोई अन्तर नहीं है, जो अन्तर करता है वह नरक में जाता है। तथा जो आपका भक्त है, वह मेरा भक्त है जो आपकी भक्ति करता है वह मेरी भक्ति करता है तथा जो आपसे द्वेष करता है वह मेरे से द्वेष करता है। इसी प्रकार वे आपस में कहते हैं जो आपके दर्शन का फल है वही मेरे दर्शन का फल है।

वे लोग आपस में आगे कहते हैं कि आपसे बढ़कर मुझे कोई प्यारा नहीं है। मैं आपके हृदय में तथा आप मेरे हृदय में स्थित हैं। श्रीरामचरितमानस में भगवान् श्रीराम कहते हैं-

**संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।**
**ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।।** (लंका का. 2)
**औरउ एक गुप्त मत सबहि कहउँ कर जोरि।**
**संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।** (उत्त. का. 45)

ऐसी स्थिति में जो मनुष्य दूसरे के इष्टदेव की निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तव में अपने ही इष्टदेव का अपमान करता है। परमात्मा की प्राप्ति से पहले भक्त अपनी समझ के अनुसार अपने उपास्यदेव के स्वरूप की जो कल्पना करता है, उपास्यदेव का असली स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण होता है, तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचि के अनुसार की हुई सच्ची उपासना को

परमात्मा सर्वथा स्वीकार करते हैं। क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति के पूर्व ईश्वर का यथार्थ स्वरूप किसी के भी चिन्तन में नहीं आ सकता।

वास्तव में हरि एवं हर(अथवा कोई अन्य इष्ट) में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। और न ही कोई किसी से छोटा या बड़ा है। इनमें केवल दृष्टि का भेद है। उपासक के अधिकार और रुचि के अनुसार किसी भी रूप में प्रधान-दृष्टि की जा सकती है। पुराणादि में जो कहीं किसी की और कहीं किसी की प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारी का मनोभाव उस रूप में दृढ़ करने के लिये-उसी रूप में 'ब्रह्म-दृष्टि' कराने के उद्देश्य से है, किसी के वास्तविक उत्कर्ष या अपकर्ष का कहीं भी तात्पर्य नहीं है।

**न हि निन्दा निन्द्यान् निन्दितं प्रवर्तते अपितु स्तुत्यान् स्तोतुम्।**

अर्थात्-निन्दा निन्दनीय की निन्दा के उददेश्य से नहीं होती, अपितु स्तुत्य की स्तुति के उद्देश्य से होती है।

भगवान् के असंख्य नाम एवं रूप हैं परन्तु मनुष्य उन असंख्य नाम-रूपों से एक साथ प्रेम या भक्ति नहीं कर सकता। प्रेम या भक्ति तो एक से ही होती है और प्रेम के प्रकट हो जानेपर वह अनेक को एक कर देता है। अनेक में एक को यथार्थतः देखना और एक में अनेक को कल्पित देखना-यही सत्य है, यही ईश्वर के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति और वेदान्त का सार है।

किसी भी उपास्यरूपों में भेद नहीं होता है। भेद केवल बाहरी क्रिया और नाम-रूपों में होता है। जैसे नाटक में अभिनेता नाना रूप धारण करता है परन्तु वस्तुतः वह जो है सो वही रहता है। इसी प्रकार हरि या हर एक ही देव की अभिव्यक्तियाँ होने के कारण मूलतः वे दोनों अभिन्न हैं।

शिव एवं विष्णु में भेद करना नामापराध में गिना जाता है। वैष्णव ग्रन्थों 'श्रीहरिभक्ति विलास', पद्मपुराण तथा नारदादि पुराणों में इसकी चर्चा विस्तार से है। पाठक इन सब बातों को यथास्थान पुस्तक में पायेंगे।

कुछ लोग शिव को संहारकर्त्ता कहकर उपासना के योग्य नहीं मानते। किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि एक दृष्टि से जो संहार है, वही दूसरी दृष्टि से उत्पादन एवं पालन है। इन सबमें नाममात्र का भेद है। दूसरे शब्दों में सृष्टि, पालन एवं संहार सापेक्ष हैं। उदाहरण के लिये पेड़ का कटना(संहार) ही लकड़ी के समान बनाने(सृजन) का आधार होता है। एक की मृत्यु दूसरे के जन्म का आधार तथा तीसरे के पालन का आधार बन सकती है। इसके अतिरिक्त सृष्टि की भाँति संहार भी तो ईश्वर का कार्य है और वह अवश्यम्भावी है। समय पर उत्पादन एवं पालन जैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है। ये तीनों ही कार्य ईश्वर के माने जाते हैं। अगर कोई यह कहता है कि सर्जक, पालक एवं संहारक

तत्त्व एक ही है तब भी संहारकरूप का ध्यान नहीं करना चाहिये तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि शिव न केवल जगत् एवं जीवन का विनाश करते हैं अपितु दुष्टों, विपत्तियों, दर्दों तथा अज्ञान आदि का भी विनाश करते हैं। अशुभ का विनाश ही शुभ का सृजन है। अतः विनाशक सर्जक भी होता है।

कुछ लोग भगवान् शंकर पर श्रद्धा रखते हैं परन्तु उन्हें मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आशुतोष शिव में दया की लीला का विशेष प्रकाश होने के कारण वे भक्तों को मनमानी वस्तु देने के लिये सदा तैयार रहते हैं परन्तु इन्हें मुक्तिदाता न समझना भूल है। शास्त्रों के अनुसार भगवान् शिव के स्वरूप का तत्त्वज्ञान ही मुक्ति है, तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना एक भ्रम है। पाठक इस पुस्तक को पढ़कर इस तथ्य को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

भगवान् शिव की परात्पर ब्रह्म के रूप में उपासना करनेवाले के लिये तो वे परब्रह्म हैं ही पर अनान्य भगवत्स्वरूपों के उपासकों के लिये वे मार्गदर्शक परम गुरु हैं। भगवान् शिव के परमगुरु या जगद्गुरु होने की बात अनेक ग्रन्थों में पायी जाती है। पाठक स्वयं ही देखेंगे। शास्त्रों का आदेश है कि गुरु की प्राप्ति तथा उनकी कृपा के बिना इष्टदेव की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य है कि जबतक मनुष्य श्रीशिवजी को प्रसन्न कर उनका कृपा-पात्र नहीं बन जाता, तबतक उसे इष्ट का साक्षात्कार नहीं हो सकता। रामायण में भगवान् राम अपने श्रीमुख से कहते हैं-

**होइ अकाम जो छल तजि सेइहि।**
**भगति मोरि तेहि संकर देइहि।।** (लंका का. 2/2)

इस प्रकार भगवान् विष्णु के भक्त के लिये भी कम से कम सद्गुरुरूप से शिव की उपासना आवश्यक है। अन्य वैष्णव ग्रन्थों में भी इस तथ्य का उल्लेख है। पुनः शक्ति के उपासक शक्तिमान् शिव को कैसे छोड़ सकते हैं, शिव के बिना अकेली शक्ति की उपासना अधूरी रहती है। गणेशजी तो शिव के पुत्र ही हैं? अतः गणेश उपासक पुत्र की पूजा करें और पिता का अपमान करें या उपेक्षा करें, यह शिष्ट मर्यादा नहीं हो सकती। इसी प्रकार सूर्योपासक भी शिवोपासना ही करते हैं क्योंकि सूर्यदेव भगवान् शिव के तेजोलिंग के नामान्तर हैं तथा वे शिव की अष्टमूर्तियों में से एक हैं। योगियों के लिये तो परम योगीश्वर शिव की आराधना आवश्यक है ही। पुस्तक में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि वैदिक संहिताओं से लेकर पौराणिक युगतक सर्वत्र शिव योगियों के ध्येय रहे हैं। ज्ञान के साधक न्याय, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शन परम कल्याणरूप शिव को ही प्राप्त करना चाहते हैं। तन्त्र तो मूलरूप से शिवोपासना के लिये ही बने हैं। अतः निष्कर्ष यह है कि किसी भी दृष्टि से-शिव को परम परात्पर ब्रह्म मानकर, महाज्ञानी, सभी विद्याओं के अधीश्वर या महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु,

महान् उपदेशक (क्योंकि सभी शास्त्र शिव द्वारा ही उपदिष्ट हैं), उत्पादक, संहारक-कुछ भी मानकर-उनकी उपासना करना सबके लिये कर्त्तव्य है।

कहीं-कहीं ऐसा आता है कि वैष्णव शिवलिंग को नमस्कार न करे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णव का शंकर से द्वेष है। इसका तात्पर्य यह है कि वैष्णवों के मस्तक पर उर्ध्वपुण्ड्र का जो तिलक रहता है, उसमें विष्णु के दो चरणों के बीच में लक्ष्मीजी का लाल रंग का चिन्ह (श्री) रहता है। लक्ष्मीजी को शिवलिंग के पास जाने में लज्जा आती है। अतः वैष्णवों के लिये शिवलिंग की पूजा तथा नमस्कार करने का निषेध आया है। परन्तु तिलक लगाने से पहले वह शिवलिंग की पूजा कर सकता है। पुनः शंकरजी की प्रतिमा के लिये ऐसा कोई निषेध वैष्णव ग्रन्थ में नहीं मिलता। कई बार उपरोक्त निषेध का साम्प्रदायिक अर्थ भी लिया जाता है क्योंकि प्राचीन काल में लिंग सर्वोच्च शक्ति महादेव का प्रतीक था। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा एवं विष्णु के विवाद के दौरान जो ज्योतिर्मय लिंग प्रकट हुआ था वह त्रिदेववाले रुद्र का नहीं अपितु परात्पर ब्रह्म का लिंग अथवा प्रतीक था जो ॐकारमय था। यहाँ लिंग का अर्थ जननेन्द्रिय नहीं है। अतः लक्ष्मीजी को शिवलिंग के सामने आने में लज्जा तभी आयेगी जब उसे जननेद्रिय माना जाय। बाद में पुराणों के देव-दारू वन की कथा(तथा कुछ अन्य कथाओं) के आधार पर लोग कहीं-कहीं लिंगपूजा का अर्थ शिव के जननेन्द्रिय की पूजा समझ लेते हैं। खैर वास्तविक स्थिति जो भी हो, यहाँ कहने का अभिप्राय यह है कि शैवों एवं वैष्णवों में इस बिन्दु को लेकर झगड़ने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि किन्हीं भी प्राचीन ग्रन्थों में वैष्णवों को शिवलिंग पूजा करने की मनाही नहीं है। यों तो शैव एवं वैष्णव सभी ग्रन्थों में समय के साथ-साथ साम्प्रदायिक मिलावटें की गयी हैं, उनसे हमें सावधान रहना चाहिये। इन मिलावटों की पहचान तत्संबंधी ग्रन्थों की सम्पूर्ण विचारधारा के साथ उसकी तुलना कर की जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रयोजन मुख्यतः सभी देवस्वरूपों, विशेषकर शिव एवं विष्णु, की एकता को प्रदर्शित करना रहा है। गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण का भी यही लक्ष्य रहा है। इसके द्वारा प्रकाशित दो विशेषांक 'शिवांक' एवं 'शिवोपासनांक' में भी इस पुस्तक का प्रयोजन कुछ सीमातक पूरा होता है। परन्तु इस पुस्तक को लिखने की आवश्यकता इसलिये पड़ी की उपरोक्त विशेषांक विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गये लेखों का संग्रह होने की वजह से न केवल उनके विषयों में विभिन्नता तथा पुनरावृत्ति है अपितु उनके अन्दर ठीक ढंग से शास्त्रों के सन्दर्भ भी नहीं दिये गये हैं। उनके द्वारा न तो प्रत्येक शास्त्रों का प्रतिनिधित्व होता है और न ही वे पर्याप्त एवं व्यवस्थित हैं। कई जगहों पर केवल ग्रन्थ का नाम दिया गया है, उनका सन्दर्भ नहीं। कहीं-कहीं अधूरे या अपूर्ण

सन्दर्भ दिये गये हैं, इस कारण से पाठकों के एक वर्ग को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उपरोक्त कमियों के बावजूद भी इन अंकों की कुछ सामग्री बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन महत्त्वपूर्ण अंशों को हमने भी इस पुस्तक में सम्मिलित कर लिया है।

भगवान् शिव के स्वरूप संबंधी इस पुस्तक में निकाले गये निष्कर्षों को कई विद्वान् पाठक इस आधार पर हजम करने में कठिनाई महसूस कर सकते हैं कि इसके निष्कर्ष मुख्यतः देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों तथा असुरों आदि की शिव-संबंधी स्तुतियों पर आधारित हैं। स्तुतियाँ स्तोता की संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं न कि तथ्यात्मक। अतः संवेगात्मक उद्गारों(स्तुतियों) के आधार पर तथ्यात्मक निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। शिव की प्रसन्नता, कृपा अथवा सहायता प्राप्त करने के लिये की गयी स्तुतियाँ ठीक उसी प्रकार की मानी जा सकती हैं जिस प्रकार कि दुःख या कठिनाई की स्थिति में या अपना काम निकालने के लिये अथवा डर के कारण व्यक्तियों द्वारा की गयी चापलूसी। परन्तु स्तुतियों की इस तरह की व्याख्या ठीक नहीं है। यह सत्य है कि स्तुतियाँ भक्ति की भावना से प्रेरित होती हैं परन्तु वे चाटुकारों की अभिव्यक्तियों की भाँति छल-कपटपूर्ण नहीं होतीं। वे निष्कपट, सरल एवं सच्चे हृदय से की गयी होती हैं। स्तुतियाँ स्तोता के पूर्व अनुभवों, ज्ञान एवं अपने गुरुजनों अथवा पूर्वजों की शिक्षाओं पर आधारित होती हैं। अतः वे पूर्णतः भावात्मक न होकर तथ्यात्मक भी होतीं हैं। अगर वे तथ्यात्मक न होतीं तो एक ही आशय की स्तुति सभी स्तोता अलग-अलग परिस्थितयों में कैसे करते? कुछ स्तुतियाँ भगवान् शिव के दर्शन से पहले की गयी हैं तथा कुछ दर्शन के बाद। जो स्तुतियाँ बाद में की गयी हैं उनके आशय भी पहले जैसे ही हैं। धार्मिक जगत् में ऐसा माना जाता है कि भगवान् के दर्शन से व्यक्ति को अन्य बातों के अलावा उनके स्वरूप का भी ज्ञान हो जाता है। फलस्वरूप भगवान् शिव के दर्शन के पश्चात् की गयी स्तुति भावों के अलावा शिव-संबंधी प्रामाणिक तथ्यों को भी व्यक्त करती हैं। आध्यात्मिक-संसार में यह माना जाता है कि साधक पहले गुरु के वचनों को सत्य मानकर भगवान् के स्वरूप को समझता है। उसी समझे हुए स्वरूप को जब वह शास्त्रों में भी पाता है तो उसका विश्वास और पक्का हो जाता है। और जब वह स्वयं अपने अनुभव में भी उसी स्वरूप को पाता है तो उसे गुरु के वचनों की सत्यता का प्रमाण मिलने के साथ-साथ भगवान् के यथार्थ-स्वरूप का भी परिचय हो जाता है। गुरु के वचन, शास्त्र एवं व्यक्तिगत अनुभव-तीनों की एकरूपता ही आध्यात्मिक सत्य की प्रामाणिकता की कसौटी है। अतः जब स्तोता स्तुति प्रारम्भ करता है तो वह स्वयं अपने स्तुत्य के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता है(उसे केवल स्तुति के अनुरूप मानता भर है)। परन्तु जब उसे भगवान् के दर्शन हो जाते हैं तो उसे उनके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान

हो जाता है।[1] तदनन्तर की हुई उसकी स्तुति ज्ञानमिश्रित होने के कारण प्रामाणिक मानी जानी चाहिये। पुनः स्तुति सामर्थ्यवान् की ही की जाती है। झूठी स्तुति से किसी में सामर्थ्य नहीं पैदा हो जायगी, फलस्वरूप वह कार्य भी सिद्ध न होगा जिसके लिये स्तुति की गयी है। अतः स्तुतियों के आधार पर निकाले गये तथ्यात्मक निष्कर्षों की प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया जाना चाहिये। स्तुतियों से जो तथ्यात्मक निष्कर्ष निकाले गये हैं उनकी पुष्टि तद्ग्रन्थगत अन्य महान् व्यक्तियों, देवों अथवा गुरुओं के वचनों द्वारा भी की गयी है। अतः शिव के स्वरूपसंबंधी निकाले गये निष्कर्षों की प्रामाणिकता पर सन्देह करना तर्क संगत नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक कई पाठकों को ऊबानेवाली हो सकती है क्योंकि सभी ग्रन्थों में एक ही तरह के विचार एवं एक ही तरह के श्लोक हैं। दूसरे शब्दों में विभिन्न ग्रन्थों के (शिव के माहात्म्य संबंधी) विषयों में नवीनता का अभाव होने के कारण ऊब पैदा हो सकती है। परन्तु विद्वान् एवं सजग पाठक जो प्रस्तुत विषय के संबंध में सभी ग्रन्थों के विचारों को जानने में रुचि रखते हैं उनके लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। आस्थावान् शिवभक्तों के लिये इस पुस्तक में समस्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में निहित भगवान् शिवसंबंधी विचारों का सारांश मूल संदर्भों के साथ प्राप्त हो जायगा। अतः पुस्तक को पढ़कर वे सभी ग्रन्थों के पढ़ने का लाभ उठा सकेंगे। अन्य प्रकार के भक्तों को इस पुस्तक से शिवमाहात्म्य का परिचय विस्तार से हो जायगा फलस्वरूप वे शिवतत्त्व का पहले से बेहतर मूल्यांकन कर सकेंगे और पुण्य के भागी बनेंगे। क्योंकि शिवतत्त्व का गलत मूल्यांकन नरक पहुँचानेवाला और सही मूल्यांकन इष्ट की भक्ति तथा पुण्यफल प्रदान करनेवाला कहा गया है। सभी शास्त्रों का यही मत है, ऐसा इस पुस्तक में दिखाया गया है। अन्त में हम इतना कहेंगे कि अगर पाठकों को इस पुस्तक से शिवतत्त्व एवं उसकी उपासना के विषय में प्राप्त जानकारी उन्हें सभी प्रकार के इष्टों (भगवत्स्वरूपों) की समानता में विश्वास अथवा शिवभक्ति की ओर प्रेरित करती है तो हमारा पुस्तक लिखने का प्रयास सफल होगा।

## क्षमा प्रार्थना एवं आभार

पुस्तक लिखने का प्रयोजन जैसा बताया जा चुका है, धार्मिक सहिष्णुता बढ़ाना है। इस पुस्तक

1. भगवान् के दर्शन से पहले गुरु या शास्त्र के शब्दों के आधार पर ही साधक भगवान् के रूप की कल्पना करता है। जो यथार्थ से दूर होता है। उनके शब्दों के सही अर्थों का ज्ञान भगवद्दर्शन से पहले नहीं हो सकता। इसीलिये कहा जाता है कि भगवद्दर्शन से पूर्व भगवान् के स्वरूप की सही कल्पना कोई भी नहीं कर सकता। भगवान् के दर्शन हो जानेपर ही गुरु या शास्त्र के शब्दों का अर्थ साधक के हृदय में प्रकाशित होता है। जैसे जन्म से अंधे व्यक्ति को रूप का वर्णन तभी बोधगम्य होगा जब वह आँखों की चिकित्सा के उपरान्त देखने लग जाय।

में जो कुछ भी लिखा गया है वह ग्रन्थों पर ही आधारित है। अपनी ओर से इसमें कुछ भी ऐसा नहीं कहा गया है जो किसी को आपत्तिजनक हो। इस बात की पूरी सावधानी रक्खी गयी है कि किसी को भी कहीं पर आपत्ति न हो तथा किसी की भावनाओं को आघात न पहुँचे। परन्तु इस सावधानी के बावजूद भी अगर किसी को किसी स्थल पर आक्षेप हो या उनकी भावनाओं को आघात पहुँचता हो तो उसके लिये हम क्षमा चाहते हैं तथा उन स्थलों को बताने पर हम उसका अगले संस्करण में ध्यान रक्खेंगे।

संस्कृत का विद्यार्थी न होने के कारण तथा आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञ विद्वानों की सलाह प्राप्त न होनेपर मैंने अपने विवेक से स्वयं ही कई श्लोंको की व्याख्या की है। ऐसे स्थलों पर भूलें हो सकती हैं। अतः विद्वान् पाठकों से क्षमा चाहता हूँ तथा उनसे निवेदन है कि ऐसे स्थलों को हमें बतायें ताकि उनकी पुनरावृत्ति अगले संस्करण में न हो सके।

पुस्तक लिखने में कई विद्वानों की पुस्तकों का प्रयोग किया गया है। उनमें से कुछ का स्पष्ट हवाला पुस्तक में यथास्थान दे दिया गया है। जिन स्थलों पर प्रमादवश या किन्हीं कारणों से हवाले छूट गये हैं उन विद्वानों से मैं क्षमा चाहूँगा। पुस्तक में कुछ स्थल ऐसे भी हो सकते हैं जिसकी सामग्री अन्य पुस्तकों से ली गयी हो परन्तु उन स्थलों का उद्धरण न दिया गया हो। इस तरह की अनजान में या प्रमादवश हुई भूलों के लिये भी विद्वानों से क्षमा चाहता हूँ।

अन्त में छपाई में होनेवाली भूलें जिनसे पाठकों को समझने में कठिनाई का सामना करना पड़े उसके लिये भी मैं क्षमा चाहता हूँ।

मैं गुरुदेव पूज्यपाद श्रीशिवलौती महाराज का अत्यन्त आभारी हूँ जो न केवल पुस्तक लिखने के प्रेरणास्रोत रहे अपितु संपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन के व्यवस्थापक भी हैं। उन्होंने पुस्तक के शीर्षक, स्वरूप एवं सामग्री संबंधी महत्त्वपूर्ण विचार देकर तथा पुस्तक के प्रकाशन की सम्पूर्ण जिम्मेवारी ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत किया है, इसके लिये मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

पुस्तक लिखने के लिये मैंने जिन-जिन पुस्तकों का प्रयोग किया है उनके लेखकों एवं प्रकाशकों का भी आभार प्रदर्शन करता हूँ। पुस्तक लिखते समय श्लोकों के अर्थ-संबंधी या अन्य व्याकरण-संबंधी जो-जो परामर्श जिन-जिन विद्वानों से हमने प्राप्त किया है मैं उन सबका आभार व्यक्त करता हूँ। इन विद्वानों में संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के डॉ. अरविन्द कुमार तथा डॉ. सुरेन्द्र मोहन मिश्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रकाशकों में गीताप्रेस का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिनके विपुल प्रकाशनों से मैंने लाभ उठाया है। गीताप्रेस के प्रमुख प्रकाशन जिनका यहाँ उपयोग किया गया है इस प्रकार हैं-महाभारत, बाल्मीकि तथा अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस, संक्षिप्त योगवासिष्ठ,

भागवत महापुराण, विष्णु महापुराण, हरिवंश पुराण, संक्षिप्त पद्मपुराण, संक्षिप्त स्कन्दपुराण, संक्षिप्त वराहपुराण, संक्षिप्त भविष्यपुराण, संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुराण, संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराण, संक्षिप्त देवी भागवत, संक्षिप्त शिवपुराण, संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराण, उपनिषद्-अंक, शिवांक, शिवोपासनांक, वेदान्त दर्शन, छान्दोग्य एवं वृहदारण्यक उपनिषद्(शंकरभाष्य), तीर्थांक, गर्ग संहिता, पातंजलयोगप्रदीप। हम गीताप्रेस के विशेष आभारी इसलिये भी हैं कि इस पुस्तक की तैयारी में इनके प्रकाशनों से विशेषकर तीर्थांक, शिवांक एवं शिवोपासनांक से काफी सामग्री ली गयी है।

इसी प्रकार वेंकटेश्वर प्रेस एवं नाग पब्लिशर्स का भी हम विशेषरूप से आभार व्यक्त करते हैं क्योंकि इनके कई महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों जैसे चारों वेद, अद्भुत रामायण, शिवगीता, अनेक महापुराण एवं उपपुराण आदि का प्रयोग इस पुस्तक में किया गया है।

इस पुस्तक के टंकण, प्रूफ-संशोधन तथा प्रकाशन के प्रत्येक स्तर पर सहायता करनेवाले अपने गुरु भाई श्री विनोद तनेजा का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। उन्होंने बड़ी चुस्ती से प्रूफ एवं टंकण जैसे कठिन कार्य को निपटाया। इसके लिये मैं उनका विशेष रूप से आभारी हूँ। इसी प्रकार शिवलौती महाराज के शिष्य डॉ. प्रकाशवीर अरोड़ा का भी मैं प्रमुख रूप से आभारी हूँ जो पुस्तक-लेखन के प्रत्येक स्तर-शीर्षक एवं आकार-प्रकार का निर्धारण, ग्रन्थ उपलब्ध कराना, प्रूफ संशोधन आदि-पर यथायोग्य सहायता करते रहे। दुर्लभ पुस्तकों को उपलब्ध कराने में मुझे अपने जिन-जिन मित्रों से सहायता मिली है उन सबका मैं आभार व्यक्त करता हूँ। अन्त में इस पुस्तक को लिखने में हमें जिन-जिन लोगों से प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है उन सबका मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

चूड़ेश्वर महादेव मन्दिर,
गैल, कोटि,
डाक.-जाबली (सोलन, हिमाचल प्रदेश)
अगस्त 1999

विनोद शंकर